(समयसार, १५५ गाथा चलती है) फिर से (लेते हैं)। **मोक्ष का कारण वास्तव में सम्यक्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है।** यह इसका सिद्धान्त सिद्ध करना है। अब सम्यग्दर्शन किसे कहना? **उसमें, सम्यक्दर्शन तो जीवादि पदार्थों के श्रद्धानस्वभावरूप...** आत्मा का होना, आत्मा का परिणमना। **वह है...** आत्मा जो पवित्र पूर्ण स्वभाव है, उस पवित्र स्वभाव का श्रद्धारूप से परिणमना। अकेली श्रद्धा अर्थात् विकल्प की श्रद्धा वह

नहीं। चैतन्यस्वरूप जो वीतरागस्वभावस्वरूप प्रभु, उसका दर्शन अर्थात् सम्यग्दर्शन, वीतरागस्वभाव की पर्यायरूप से आत्मा का परिणमना, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। आहाहा! यह कल आ गया है।

वे लोग ऐसा ही कहते हैं कि जीवादि (पदार्थों की) श्रद्धा, वह समकित है। परन्तु श्रद्धा अर्थात् क्या? श्रद्धा अर्थात् विकल्प है? यह जीवादि विकल्प है, वह श्रद्धा है? चैतन्यस्वरूप रागरहित पूर्ण शुद्ध पवित्र स्वरूप, अनन्त गुण का पिण्ड, वह उसका अनन्त गुण का शुद्ध स्वरूप है, वह पर्याय में सम्यग्दर्शनरूप से, वीतरागपर्यायरूप से होना, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। आहाहा!

(अब) सम्यग्ज्ञान (किसे कहते हैं)? **जीवादि पदार्थों के ज्ञानस्वभावरूप..** अनन्त गुण (स्वरूप) जो जीववस्तु है, उसके ज्ञान का होना, स्वभाव का-ज्ञान का होना, आत्मस्वभाव का-ज्ञान का परिणमना, वह ज्ञान है। आहाहा! उसे ज्ञान कहते हैं। यह सब वकालात और डॉक्टर का, एम.ए. का और एल.एल.बी. का यह सब कुज्ञान है। ऐ.. कनुभाई! जज का ज्ञान कुज्ञान है, ऐसा कहते हैं। वह तो ठीक, कुज्ञान, परन्तु यह शास्त्र का ज्ञान करे, वह भी कुज्ञान है-परलक्ष्यी है (इसलिए)। आहाहा!

भगवान आत्मा में अनन्त-अनन्त गुण की राशि-महा ढ़ेर! शुद्धस्वरूप का परिणमना। ज्ञान अर्थात् आत्मा। उस आत्मा का ज्ञानरूप से अर्थात् स्वभावरूप से, शुद्धस्वभावरूप से होना, उसका नाम ज्ञान कहा जाता है। आहाहा! दो बोल तो आये थे।

अब चारित्र किसे कहना? आहाहा! **रागादि के त्यागस्वभावरूप..** आत्मा का परिणमना। आहाहा! महाव्रतादि तो राग है, वह कहीं चारित्र नहीं है। आहाहा! वह तो अचारित्र है। उन रागादि का (अर्थात्) राग, द्वेष, विकल्पादि के त्यागस्वभावरूप। राग के विकल्प के अभावस्वभावरूप, त्यागस्वभावरूप। राग का विकल्प है - चाहे तो पंच महाव्रत का हो परन्तु उस राग के त्यागस्वभावरूप, राग के अभावस्वभावरूप। **ज्ञान का..** अर्थात् आत्मा का होना। आहाहा!

आत्मा अपने आनन्द और अनन्त गुण के शुद्धस्वरूप में रमणता से होनेवाला जो चारित्र, उसे चारित्र कहते हैं। पंच महाव्रत और पाँच समिति और गुप्ति और अट्ठाईस

मूलगुण के विकल्प (आयें), वह चारित्र नहीं है। आहाहा! वह अचारित्र है, दोष है। ऐसी चारित्र की व्याख्या! आहा!

जो राग-द्वेषादि के त्यागस्वभाव (अर्थात्) उनका अभाव-स्वभाव। राग का अभाव-स्वभाव, राग का त्याग-स्वभाव, उसरूप आत्मा का होना। भगवान आत्मा जैसा वीतरागस्वभाव से है, ऐसे वीतरागस्वभाव की श्रद्धा, वीतरागस्वभाव का परिणमना ज्ञान और वीतरागरूप होना, रमना, उसका नाम चारित्र है। आहाहा!

रागादि के त्यागस्वभावरूप ज्ञान का होना.. राग के सद्भाव से चारित्र होना, ऐसा नहीं। आहाहा! ऐसी व्याख्या। राग-विकल्प शुभ या अशुभ, उसके त्याग-अभावस्वभावरूप आत्मा का परिणमना। रागरूप न होना और वीतरागस्वभावरूप, राग के स्वभाव के अभावस्वभावरूप शुद्ध चारित्ररूप, शुद्ध पवित्ररूप परिणमना, उसका नाम चारित्र है। आहाहा! है? **सो चारित्र है।**

अतः इस प्रकार ऐसा फलित हुआ.. अतः इस प्रकार ऐसा परिणाम आया। इसका परिणाम इस फलरूप आया कि **सम्यक्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों एक ज्ञान का ही भवन (-परिणमन) है।** ये तीनों मात्र आत्मा का भवन है, आत्मा का परिणमना है, रागादि नहीं। तीनों में... आहाहा! देखो, परिणाम लिया! अरे! भगवान आत्मा अनन्त गुण का अनन्त धाम! स्वयं ज्योति सुखधाम! यह सुखस्थान, आनन्दधाम, उसका आनन्दरूप से परिणमकर प्रतीति-सम्यग्दर्शन आत्मा का स्वभाव (होवे), उसका नाम सम्यग्दर्शन; और आनन्द का ज्ञान-स्वभाव का ज्ञान; राग का नहीं, शास्त्र का नहीं; स्वभाव का ज्ञान—स्वभावसन्मुख होकर स्वभाव में से होनेवाला ज्ञान, वह ज्ञान और स्वभाव में राग के अभावस्वभावरूप से स्वभाव का-आत्मा का, ज्ञान का अर्थात् आत्मा का होना, उसे चारित्र कहते हैं। आहाहा!

इस प्रकार, इसी प्रकार से **ऐसा फलित हुआ...** उसका फल यह आया, उसका परिणाम यह आया कि **सम्यक्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों..** ये तीनों **एक ज्ञान का ही भवन..** मात्र आत्मा के स्वभाव का होना, वह है। आहाहा! सम्यग्दर्शन हो या सम्यग्ज्ञान अथवा सम्यक्चारित्र हो, तीनों अनन्त शुद्ध पवित्र जो स्वभाव है, राग के अभावस्वभावरूप

ध्रुवस्वभाव, उस ध्रुवस्वभाव का परिणमना... आहाहा! पर्यायरूप से (परिणमित होना), उसमें शक्ति जो सत्व है, उसका पर्यायरूप से सत्वपना आना, उसे यहाँ दर्शन-ज्ञान और चारित्र कहते हैं। आहाहा!

जो सत्प्रभु है, अकारणिक सत् है। ज्ञायक अकारणिक है। सत् अनन्त-अनन्त गुण का भरपूर सत् है, उस सत् का सत्रूप से, उसका सत्व जो शुद्ध, पवित्र, वीतरागता है, उस वीतरागरूप से परिणमना, उस परिणमन को तीन प्रकार लागू पड़ते हैं—दर्शन-ज्ञान और चारित्र। आहाहा! ऐसी तो बात है।

प्रवचनसार में अन्त में आया न! राग छोड़कर। बीच में राग आता है, परन्तु वह कोई चारित्र नहीं है। छठवें गुणस्थान में भी राग आवे, वह चारित्र नहीं है - ऐसा कहते हैं। जितना स्वभाव का परिणमन हुआ है, उतना चारित्र है परन्तु राग का अभाव होकर जब चारित्र की सातवें गुणस्थान की परिणति हो, उसे यहाँ चारित्र वर्णन किया है। आहाहा! ऐसा मार्ग!

मुमुक्षु : कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने महाव्रत पालन किये थे या नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : पालन नहीं किये थे। महाव्रत का विकल्प आया था, उसे जाना था कि यह दुःखरूप है। उनके स्वामी नहीं थे, उनके मालिक नहीं थे, उनका स्वामीपना उनमें नहीं था। आत्मा में स्वस्वामीसम्बन्ध नाम का सैंतालीसवाँ (शक्ति में) गुण है। वह आत्मा द्रव्य शुद्ध, गुण शुद्ध, और पर्याय शुद्ध, वह उसका स्व और उसका वह स्वामी। राग हो, उसका वह स्वामी नहीं और वह उसका स्व नहीं। उसका स्व नहीं, इसलिए उसका स्वामी नहीं। आहाहा! ऐसी बातें हैं।

जो अपना द्रव्य स्व-शुद्ध, त्रिकाली गुण स्व-शुद्ध और वर्तमान पवित्र पर्याय, वीतरागी अनन्त गुण की निर्मल पर्याय स्व-शुद्ध, इनका वह स्वामी है। बीच में रागादि आवे, परन्तु उनका यह स्वामी नहीं, उनका मालिक नहीं। आहाहा! मेरे स्वामी बिना का वह माल है। आहाहा!

एक बार बहुत लाखों रुपयों का माल समुद्र के किनारे आया था। फिर उसमें ऐसा था कि यदि वह पकड़ में आये तो बहुत बड़ा गुनाह हो, ऐसा था। इसलिए उस माल का

स्वामी हुआ नहीं। लाखों का, बहुत लाखों का माल था। (कोई) मालिक नहीं हुआ। इसी प्रकार भगवान आत्मा, बीच में राग आवे, उसका स्वामी नहीं होता। पकड़ में आ जाए, स्वामी हो तो पकड़ में आ जाए। खम्भात के किनारे बड़ा हुआ था-बहुत लाखों की कपड़े की गाँठें (आयी थी)। बहुत लाखों की गाँठें (आयी थी)। कुछ अपराध से छिपाकर लाये होंगे। उसमें कोई कहे कि यह है किसकी? वह पकड़ में आया। इसलिए उसका मालिक (कहे), यह मेरा माल नहीं है। हो गया। आहाहा!

इसी प्रकार आत्मा में पवित्र भगवान पूर्णानन्द का नाथ जहाँ आनन्द और शान्तिरूप परिणमता है, उसकी प्रतीतिरूप से, उसके ज्ञानरूप से और उसके राग के अभाव के स्वभावरूप से परिणमता है, वह चारित्र, दर्शन और ज्ञान है। आहाहा! ऐसा है। मुद्दे की रकम की बात छोड़कर सब बातें (करते हैं)। ऐसे पालन करो और यह करो और वह करो, देश सेवा करो, व्रत पालन करो, अपवास करो, शास्त्र बनाओ, शास्त्र की प्रभावना करो, प्रसार करो... परन्तु किसका? बापू! क्या है यह? आहाहा! करोड़ों शास्त्र बनाओ, पच्चीस लाख के-पचास लाख के (बनाओ), फिर शास्त्र की प्रभावना करो। परन्तु उसमें क्या है? वह तो सब विकल्प है।

मुमुक्षु : शास्त्र प्रकाशित करने की प्रभावना तो आपने की है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह प्रभावना नहीं है। इसे अन्दर राग से रहित ऐसी दृष्टि-ज्ञान और रमणता (करना), वह इसकी प्रभावना है, स्व प्रभावना है, परन्तु बीच में ऐसा राग आवे, उसे व्यवहार प्रभावना कहा जाता है, परन्तु है बन्ध का कारण। आहाहा! ऐसी बातें हैं।

तीनों का परिणाम कहा - **ऐसा फलित हुआ कि सम्यक्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों एक ज्ञान का ही भवन..** (है) एक आत्मा के स्वभाव का भवन है, जिसमें राग के अंश की बिल्कुल मदद या सहायता नहीं है। आहाहा! शास्त्र में व्यवहाररत्नत्रय को निमित्त कहा जाता है परन्तु उस निमित्त की सहायता नहीं है और निमित्तरूप कहा, वह तो उसे उपचार से कहा है, वस्तुस्थिति तो यह है। आहाहा! वीतरागमार्ग कठिन है।

तीनों की व्याख्या की है। फिर कहा कि ये **तीनों एक ज्ञान का ही भवन..** एक

आत्मस्वभाव का होना, ऐसा। देखा ? एक (कहा है)। उस एक पर वजन है। दोकला राग का विकल्प भी शामिल नहीं। दो होवे तो बिगड़ेगा, एकड़े एक और बिगड़े दो। आहाहा! एक चैतन्यस्वरूप भगवान पूर्णानन्द और पूर्ण चैतन्यज्योति, अतीन्द्रिय अनन्त-अनन्त गुण का पिण्ड, वह इसके गुण के स्वभावरूप से पर्याय में परिणमना, स्वभावरूप से परिणमना, वह तीनों **एक ज्ञान का ही भवन..** (है)। अकेला आत्मस्वभाव का होना है। आहाहा! ऐसी स्पष्ट बात है। उसमें व्यवहारचारित्र और राग की गन्ध भी यहाँ नहीं है। आहाहा! उसके कारण पालते-पालते (शुद्धता) होगी, यह फिर कितने ही कहते हैं। टीका में कहीं आता है (कि) व्यवहार साधन-साध्य। वह तो समझाया है। आहाहा!

अकेला भगवान राग और विकल्परहित जो गुण-स्वभाव, ऐसा अकेला प्रभु, अपने शुद्धस्वभावरूप द्रव्य और गुण से है, उस प्रकार से पर्याय में शुद्धरूप से, उसका जो सत्व है, वह पर्यायरूप से सत्व आया—परिणमना, उसे दर्शन-ज्ञान-चारित्र कहते हैं। आहाहा! कठिन काम है। यहाँ तो जरा बाल ब्रह्मचारी लड़कियाँ हों, दीक्षा ले (तो) ओहोहो! क्या चारित्र! धूल में भी चारित्र नहीं है। आहाहा! अभी सम्यग्दर्शन, शुद्धस्वभाव के परिणमन की खबर नहीं, (वहाँ चारित्र आया कहाँ से) ?

आहाहा! त्रिकाली भगवान महासत्ता जिसकी शुद्धपवित्र, उसके होनेरूप, उसके होनेरूप है, वैसा ही होनेरूप परिणमन में-पर्याय में-अवस्था में आवे, तब तो उसे अभी सम्यग्दर्शन कहते हैं। ऐसा ही परिणमन आवे, तब उसे ज्ञान कहते हैं और वैसा ही स्वभाव का परिणमन आवे, उसे रागादि के त्यागस्वभावरूप चारित्र कहते हैं। आहाहा! है या नहीं उसमें ?

पहले तीनों की बात तो की है, फिर लिया कि **तीनों एक ज्ञान का ही भवन..** है। एक आत्मस्वभाव का होना है। आहाहा! भाषा रखी, देखा ? अकेला स्वभाव शुद्ध चैतन्य प्रभु, अकेले ज्ञान और आनन्द और शुद्धस्वभाव का होना, जिसमें व्यवहार की गन्ध नहीं, व्यवहार की सहायता नहीं.. आहाहा! व्यवहार ऐसा होवे तो यह निश्चय पावे, (ऐसी) जिसमें गन्ध नहीं। यह बात ही झूठी है। आहाहा! व्यवहार की बातें करे, (इसलिए) लोग प्रसन्न हों। ऐसा करो, ऐसा करो, साधर्मी को मदद करो। अरे! परन्तु साधर्मी है कहाँ ?

तू अभी साधर्मी (नहीं है), मिथ्यादृष्टि है। साधर्मी को ऐसा करो, (ऐसा कहे) तो लोगों को ऐसा लगे कि आहाहा! एक तो साधारण दीन हो। साधर्मी को ऐसा देना, मदद करना, अमुक करना, ऐसा करना, वह प्रभावना है, वह सम्यग्दर्शन की प्रभावना है। आहाहा!

यहाँ तो परमात्मा का कहा हुआ कुन्दकुन्दाचार्य सन्त कहते हैं और उनके टीकाकार उसमें से निकालकर यह भाव कहते हैं। आहाहा! पाठ है न! देखो न! **'रागादी-परिहरणं चरणं'** पाठ में है। **'जीवादी-सद्दहणं सम्मत्तं'** यह भी रागरहित जो स्वभाव की श्रद्धा, ऐसा है। **'जीवादी-सद्दहणं'** आया, इसलिए मानो जीव की श्रद्धा और अजीव और नव तत्त्व की श्रद्धा हुई, इसलिए हो गया। आहाहा! (ऐसा नहीं है)।

ये तीनों एक.. आत्मा का भवन। एक आत्मा के शुद्धस्वरूप का भवन-होना। भवन (होना)। **भवन ही है,..** ऐसा है, देखा? एक आत्मा के स्वभाव का होना ही है। (ये) तीनों एक आत्मा के स्वभाव का होना ही है। आहाहा! सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र ये तीनों एक आत्मस्वभाव का होना ही है। उसमें बिल्कुल रागादि की, निमित्त की मदद नहीं है। आहाहा! और व्यवहाररत्नत्रय से इस स्वभाव का परिणमन हो, ऐसी यह वस्तु नहीं है। आहाहा!

एक ज्ञान का... अर्थात् स्वभाव का अर्थात् आत्मा का **(-परिणमन) ही है।** आहाहा! एक आत्मा का परिणमन ही है, एक आत्मा के स्वभाव का परिणमन ही है। राग के परिणमन का अंश जिसमें बिल्कुल नहीं है। आहाहा! इसमें है या नहीं इसमें? कोई कहे कि सोनगढ़वाले एकान्त निश्चय की ही बातें करते हैं। साथ में व्यवहार की (बात) कहते नहीं। परन्तु कथन में विकल्प आवे तो भी आवे वह वस्तु नहीं है। आहाहा! यह समयसार क्या कहता है? यह अभी का समयसार है? दो हजार वर्ष पहले का कुन्दकुन्दाचार्यदेव का (रचा हुआ है) और यह अभिप्राय तो अनादि का है। यह (अभिप्राय) कहीं एक कुन्दकुन्दाचार्यदेव का नहीं है। अनादि सन्त दिगम्बर मुनि, केवलियों का यह अभिप्राय है। आहाहा! 'एक होय तीन काल में परमारथ का पन्थ।' उसके दो भाग नहीं होते कि ऐसा भी होता है और ऐसा भी होता है। आहाहा! कठिन पड़े, एकान्त लगे। अनेकान्त चाहिए, व्यवहार से भी होता है, स्वभाव से भी होता है, (ऐसा कहो) परन्तु एक 'ही', 'एक ही',

एक स्वभाव 'ही', स्वभावरूप से परिणमना 'ही' वह दर्शन-ज्ञान-चारित्र है। एक और ही, दोनों जोड़ दिये। आहाहा! अरे! प्रभु! सत्य का मार्ग तो ऐसा है न प्रभु! दुनिया कुछ माने और मनवा दे, उसे लाखों लोग मानें... ओहोहो! क्या व्यवहार यह है और अमुक यह है! आहाहा! बड़ा गजरथ निकाला, दस लाख खर्च किये, इसलिए उसमें धर्म हो गया!

मुमुक्षु : संघवी की पदवी मिले।

पूज्य गुरुदेवश्री : पदवी अज्ञानी दे। संघवी की पदवी दे। आहाहा! यह तो संघ बड़ा भगवान अनन्त गुण का संघ! आहाहा! उसकी पदवी जिसने पर्याय में प्राप्त की है, आहाहा! जिसे निमित्त और राग के साथ लेना-देना कुछ नहीं। व्यवहाररत्नत्रय के साथ निश्चयरत्नत्रय जो यह है, उसे दूसरे का लेना-देना कुछ नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : निश्चय तो व्यवहार का निषेध करता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अभाव, स्वभावरूप से परिणमता है, वह अभावपना बताता है कि व्यवहार था, उसका अभाव स्वभाव। आहाहा! व्यवहार से होता है, (ऐसा जो कहे) वह तो जैनदर्शन नहीं, वह वीतरागमार्ग नहीं। आहाहा!

पहले आत्मा की व्याख्या की। आत्मा इस प्रकार स्वभावरूप से परिणमे, वह सम्यग्दर्शन; स्वभावरूप से परिणमे, वह ज्ञान; स्वभावरूप में रागादिरहित होकर परिणमे, वह चारित्र। पश्चात् इकट्ठा करके एकदम एकान्त कर दिया। ये **तीनों एक..** आत्मा का भवन है, जिसमें राग और निमित्त की कुछ लेश अपेक्षा नहीं। निरपेक्षरूप से (परिणमता है)। आहाहा! एक आत्मा के स्वभाव का भवन ही। भवन अर्थात् होना, परिणमना। **इसलिए ज्ञान ही परमार्थ मोक्ष का कारण है।** लो, अन्तिम परिणाम (यह किया)। ज्ञान अर्थात् आत्मा। आत्मा का स्वभाव जो शुद्ध है, वही परमार्थ से मोक्ष का कारण है। उस शुद्ध का परिणमन होना, वह (मोक्ष का कारण है)। जो त्रिकाल शुद्ध है.. आहाहा! उस शुद्ध का परिणमन होना, वही परमार्थ से मोक्ष कारण है। चार लाईन, पाँच लाईन में बहुत भरा है! आहाहा!

भावार्थ : आत्मा का असाधारण स्वरूप ज्ञान ही है। अब यहाँ क्या कहते हैं? कि ज्ञान, ज्ञान क्यों कहा? आत्मा नहीं लिया और ज्ञान.. ज्ञान क्यों कहा? (क्योंकि)

आत्मा का असाधारण.. अर्थात् किसी दूसरे में यह (गुण) नहीं है, इसे दूसरा कोई ऐसा गुण नहीं है। **असाधारण स्वरूप ज्ञान ही है।** कि जो स्व और पर को जानने की स्वत: सामर्थ्य है। दूसरे गुण जानने की सामर्थ्य नहीं रखते और रागादि की बात तो यहाँ है ही नहीं। आहाहा!

आत्मा का असाधारण.. अर्थात् दूसरा कोई नहीं, ऐसा स्वरूप यह **ज्ञान ही है। और इस प्रकरण में..** इस अधिकार में **ज्ञान को ही प्रधान करके विवेचन किया है।** ज्ञान का होना, ज्ञान का होना, राग का होना नहीं, राग का होना नहीं। आहाहा! इस ज्ञान को ही मुख्य करके व्याख्यान है। इसलिए **ज्ञान को ही..** आत्मा के ज्ञान को ही। **प्रधान..** मुख्य **करके विवेचन किया है। इसलिए..** ऐसा क्यों कहा? कि दूसरे गुण अन्दर शामिल हैं अवश्य परन्तु ज्ञान को प्रधान करके कहा, इसलिए राग को गौण करके कहा, ऐसा यहाँ नहीं (कहना है)। यहाँ तो गुण जो अनन्त हैं, उनमें असाधारण जो ज्ञान है, उसे ही मुख्य करके कहा है। अन्दर दूसरे अनन्त गुण हैं। समझ में आया? परन्तु ज्ञान को मुख्य करके कहा, इसलिए अन्दर राग भी गौणरूप से है, ऐसा नहीं है। आहाहा! ऐसा मार्ग सुनना कठिन पड़ता है। यह भव के अन्त की बातें हैं न, प्रभु! जिसमें भव का अन्त न आवे, बापू! वह भवभ्रमण कर-करके मर गया है। आहाहा!

अष्टपाहुड़ में तो कहते हैं, प्रभु! तूने साधु के द्रव्यलिंग इतनी बार धारण किये.. आहाहा! कि उसके पश्चात् भी तूने अनन्त भव किये हैं। द्रव्यलिंग दिगम्बर साधु पंच महाव्रतधारी, ऐसे द्रव्यलिंग इतनी बार धारण किये कि अनन्त-अनन्त बार पालन किये और उसके पश्चात् अनन्त बार तूने अनन्त भव किये हैं। आहाहा! और तेरे जन्म की जननी माता (के), तेरे दु:खों को देखकर तेरे रुदन के आँसू ऐसे गिरे, तेरी माँ को (इतने आँसू आये...) आहाहा!

ऐसे बीस वर्ष का युवक, छह महीने-बारह महीने का विवाहित हो, इकलौता पुत्र हो और उसकी माँ उसे देखती हो (कि) अरे! अब (मरने की) तैयारी है। अर र! आहाहा! चला यह! ऐसा कहा था, भाई! कैसा लाखाणी? मूलजी लाखाणी! मूलजी का बड़ा लड़का था न? भानुभाई! जवान व्यक्ति। भूराभाई के यहाँ विवाह हुआ था, पोरबन्दर। उसकी बहू कहे, यह लड़का चला। आहा! विवाहित! क्या कहलाता है जैनप्रकाश?

अपना आत्मधर्म! भानु का था। पहले वह भानु का था। सम्पादकरूप से (वह था)। विवाहित बड़े गृहस्थ में। आहाहा! जिसके विवाह में ऐसे प्लेन में आम उतरे थे और बड़ा प्रीतिभोज किया था। उसकी माँ कहे, देखो! लड़का (चला)। देह छूट गयी एकदम! आहा! ऐसा मरण होने पर तेरी माँ के आँसू, जननी आँसू के ढ़ेर करे तो पूरे समुद्र भर जाएँ, कहते हैं। समुद्र भरे, इतने तेरी माँ ने तेरे पीछे (आँसू बहाये हैं), बापू! आहाहा! भाई! तुझे खबर नहीं। अनन्त-अनन्त भव में कहाँ भीड़ पड़ गयी है और कहाँ दुःखों का ढ़ेर भोगा है? भाई! तू भूल गया। आहाहा! तेरे दुःख को देखकर दूसरे को रुदन आया है, प्रभु! ऐसे दुःख भोगे हैं, भाई! आहाहा! वह तो इस स्वरूप की प्राप्ति बिना। इसके बिना सब हुआ। द्रव्यलिंग भी धारण किया, पंच महाव्रत अनन्त बार पालन किये, दिगम्बर साधु अनन्त बार हुआ। आहाहा! 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायौ।' मुनिव्रत पालन किया। पंच महाव्रत (पालन किये)। वस्त्र का त्याग (किया), एक धागा (रखा) नहीं, ऐसा मुनिव्रत पालन किया, परन्तु अन्दर सम्यग्दर्शन—आत्मस्वभाव की दृष्टि बिना सब व्यर्थ निकला। आहाहा!

मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो।
पै निज आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो।

परन्तु आत्मा राग से भिन्न है, उसका ज्ञान और समकित बिना इसे सुख का स्वाद नहीं आया। यह पंच महाव्रत के परिणाम का स्वाद, वह दुःख है। आहाहा! पंच महाव्रत और अट्ठाईस मूलगुण के विकल्प, वे दुःख हैं। बापू! तूने दुःख भोगा। तुझे सुख नहीं मिला। आहाहा! आहाहा!

यह यहाँ कहते हैं **इस प्रकरण में ज्ञान को ही..** मुख्य करके। मुख्य करके का अर्थ, उसके अनन्त गुण हैं, इस अपेक्षा से। ज्ञान को मुख्य करके अर्थात् व्यवहार को गौण करके, ऐसा (आशय) यहाँ नहीं है, यहाँ ऐसी अपेक्षा नहीं है। आहाहा! **ज्ञान को ही..** मुख्य करके **विवेचन किया है।** और, **इसलिए 'सम्यक्दर्शन, ज्ञान और चारित्र - इन तीनों स्वरूप ज्ञान ही परिणमित होता है'..** तीनों स्वरूप से ज्ञान ही परिणमता है। **यह कहकर ज्ञान को ही मोक्ष का कारण कहा है।**

ज्ञान है, वह अभेद विवक्षा में आत्मा ही है... देखा? यह तो ज्ञान (से) बात की है, बाकी अभेद से तो वह आत्मा ही है। आहाहा! **ज्ञान है, वह अभेद...** ज्ञान और द्रव्य आत्मा, दोनों। अभेद कथन में ज्ञान, वही आत्मा है। **ऐसा कहने में कुछ भी विरोध नहीं है,.** आहाहा! **इसीलिए टीका में कई स्थानों पर आचार्यदेव ने ज्ञानस्वरूप आत्मा को 'ज्ञान' शब्द से कहा है।** ज्ञानस्वरूप भगवान को 'ज्ञान' शब्द से ही कहा है। ज्ञान का परिणमना.. ज्ञान का परिणमना.. ज्ञान का परिणमना; राग का परिणमना नहीं अर्थात् आत्मा का परिणमना, ऐसा अर्थ लेना। आहा!

गाथा–१५६

अथ परमार्थमोक्षहेतोरन्यत् कर्म प्रतिषेधयति–

मोत्तूण णिच्छयट्ठं ववहारेण विदुसा पवट्टंति।
परमट्ठ–मस्सिदाण दु जदीण कम्मक्खओ विहिओ।।१५६।।

मुक्त्वा निश्चयार्थं व्यवहारेण विद्वान्सः प्रवर्तन्ते।
परमार्थ–माश्रितानां तु यतीनां कर्म–क्षयो विहितः।।१५६।।

यः खलु परमार्थमोक्षहेतोरतिरिक्तो व्रततपःप्रभृतिशुभकर्मात्मा केषाञ्चिन्मोक्षहेतुः स सर्वोऽपि प्रतिषिद्धः, तस्य द्रव्यान्तरस्वभावत्वात् तत्स्वभावेन ज्ञानभवनस्याभवनात्, परमार्थमोक्षहेतोरेवैक–द्रव्यस्वभावत्वात् तत्स्वभावेन ज्ञानभवनस्य भवनात्।।१५६।।

अब, परमार्थ मोक्षकारण से अन्य जो कर्म, उनका निषेध करते हैं:–

विद्वान् जन भूतार्थ तज, व्यवहार में वर्तन करे।
पर कर्मनाश विधान तो, परमार्थ–आश्रित संत के।।१५६।।

गाथार्थ : [निश्चयार्थं] निश्चयनय के विषय को [मुक्त्वा] छोड़कर [विद्वांसः] विद्वान [व्यवहारेण] व्यवहार के द्वारा [प्रवर्तते] प्रवर्तते हैं; [तु] परन्तु [परमार्थम् आश्रितानां] परमार्थ के (–आत्मस्वरूप के) आश्रित [यतीनां] यतीश्वरों के ही [कर्मक्षयः] कर्मों का नाश [विहितः] आगम में कहा गया है। (केवल व्यवहार में प्रवर्तन करनेवाले पण्डितों के कर्मक्षय नहीं होता)।

टीका : कुछ लोग परमार्थ मोक्षहेतु से अन्य, जो व्रत, तप इत्यादि शुभकर्म–स्वरूप मोक्षहेतु मानते हैं, उस समस्त ही का निषेध किया गया है; क्योंकि वह (मोक्ष हेतु) अन्य द्रव्य के स्वभाववाला (पुद्गलस्वभाववाला) है, इसलिए उसके स्व–भाव

से ज्ञान का भवन (होना) नहीं बनता–मात्र परमार्थ मोक्षहेतु ही एक द्रव्य के स्वभाववाला (जीवस्वभाववाला) है, इसलिए उसके स्वभाव के द्वारा ज्ञान का भवन (होना) बनता है।

भावार्थ : क्योंकि आत्मा का मोक्ष होता है, इसलिए उसका कारण भी आत्मस्वभावी ही होना चाहिए। जो अन्य द्रव्य के स्वभाववाला है, उससे आत्मा का मोक्ष कैसे हो सकता है? शुभ कर्म पुद्गलस्वभाववाले हैं, इसलिए उनके भवन से परमार्थ आत्मा का भवन नहीं बन सकता; इसलिए वे आत्मा के मोक्ष के कारण नहीं होते। ज्ञान आत्मस्वभावी है, इसलिए उसके भवन से आत्मा का भवन बनता है; अतः वह आत्मा के मोक्ष का कारण होता है। इस प्रकार ज्ञान ही वास्तविक मोक्षहेतु है।

गाथा - १५६ पर प्रवचन

अब, परमार्थ मोक्षकारण से अन्य जो कर्म, उनका निषेध करते हैं:– मोक्ष के कारण से अन्य जो रागादि, व्यवहाररत्नत्रय आदि, उसका इसमें निषेध करते हैं। १५६

मोत्तूण णिच्छयट्ठं ववहारेण विदुसा पवट्टंति।
परमट्ठ–मस्सिदाण दु जदीण कम्मक्खओ विहिओ।।१५६।।

आहाहा! **'विद्वत्जन भूतार्थ तज'** विद्वान तुम अन्दर निश्चय को छोड़कर व्यवहार, व्यवहार की बातें करने लग पड़े हो और व्यवहार में वर्तन, व्यवहार का वर्तन (करते हो)। आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य के समय में (ऐसे) लोग होंगे। **विद्वान् जन भूतार्थ तज,..** निश्चय वस्तु है उसे छोड़कर, अरे रे! विद्वानों तुमने क्या किया? तुम्हारी विद्वता में यह क्या फल लाये? आहाहा! व्यवहार करो, व्यवहार करो, व्यवहार से होगा। आहाहा! है या नहीं अन्दर? भाई! पाठ है या नहीं? आहाहा! **विद्वान् जन भूतार्थ तज,..**

जयसेनाचार्यदेव ने जरा दूसरा अर्थ किया है। विद्वान व्यवहार को नहीं करते, निश्चय को करते हैं, व्यवहार में प्रवर्तन नहीं करते, ऐसा कहते हैं। ऐसा अर्थ किया है। यहाँ मूल पाठ तो अमृतचन्द्राचार्य की शैली से (कहते हैं) आहाहा! **मोक्षकारण से अन्य जो कर्म उनका निषेध करते हैं:–** आहाहा!

विद्वान् जन भूतार्थ तज, व्यवहार में वर्तन करे।
पर कर्मनाश विधान तो, परमार्थ-आश्रित संत के।।१५६।।

आहाहा! अभी तो पहचान भी नहीं होती, श्रद्धा का ठिकाना नहीं होता और चारित्र ले गये और मोक्ष जाएँगे, (ऐसा कहते हैं)। बापू! कठिन बात है, भाई!

दीपचन्दजी हो गये हैं, दीपचन्दजी! उन्होंने अध्यात्म का 'पंच संग्रह' (बनाया है)। अध्यात्म पंच संग्रह में लिखा है। दीपचन्दजी क्या कहलाते हैं? चिद्विलास बनाया है न? अनुभव प्रकाश! उन्होंने कहा, तब ऐसा कहा, हों! 'अभी किसी (की) आगम प्रमाण मुझे श्रद्धा दिखायी नहीं देती, यदि मुँह से कहने जाएँ तो सुनते नहीं।' ऐसा उसमें लिखते हैं। अध्यात्म पंच संग्रह है। पाँच बड़ी पुस्तकें हैं। वह पाँच का एक संग्रह है। है, सब देखे हैं न! आगम प्रमाण श्रद्धा (दिखायी नहीं देती)। उस समय, दो सौ वर्ष पहले! आगम प्रमाण किसी की श्रद्धा (मैं) देखता नहीं। आहाहा! मुँह से कहना चाहें तो सुनते नहीं; इसलिए लिख जाता हूँ। ऐसा लिखा है।

मुमुक्षु : आज तो सुननेवाले बहुत हो गये हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : अब तो सही। अब सुननेवाले हुए हैं। लाखों लोग (सुननेवाले हो गये हैं)। जरा विचार में फेरफार करके विचार करते हैं। मार्ग तो कुछ दूसरा है।

टीका, १५६ की टीका। **परमार्थ मोक्षहेतु से अन्य,..** (अर्थात्) मोक्ष के कारण से अन्य। **व्रत, तप..** शील, तप **इत्यादि शुभकर्म..** शुभपरिणाम **कुछ लोग मोक्षहेतु मानते हैं,..** उसे मोक्ष का कारण कितने ही अज्ञानी मानते हैं। आहाहा! उस विद्वान का अर्थ कितने ही लोग कर डालते हैं। आहाहा! परमार्थ मोक्षकारण से—हेतु अर्थात् कारण। मोक्ष के कारण से-हेतु से भिन्न। यह व्रत, तप मोक्ष का हेतु नहीं है। आहाहा! पंच महाव्रत और समिति, गुप्ति व्यवहार और अट्ठाईस मूलगुण.. आहाहा! अभी तो उनका भी कहाँ ठिकाना है? हमेशा उनके लिए चौका करके आहार लेते हैं। आहाहा! उद्दिष्ट आहार—उनके लिए (बनाया हुआ आहार लेते हैं)। व्यवहार अट्ठाईस मूलगुण का ठिकाना नहीं (तो वहाँ) निश्चय तो कहाँ था? आहाहा! आहाहा! उनके लिए सब बनावे। पानी, आहार, मौसम्बी का रस, अमुक.. आहाहा!

कोई यहाँ कहता था (कि) जयपुर में विद्यानन्दजी थे। एक महीने के तीस दिन के सेठ निश्चित करे। इस दिन (इस) जगह जाना, इस (दिन) इस जगह (जाना, ऐसा) तीस के स्थान (निश्चित करे)। उनके लिए बनावे और सेठ बनावे और वहाँ लेने जाए। अभी कोई कहता था। कौन कहता था? कोई कहता था। श्रीपालजी? दिल्लीवाले! आहाहा! श्रीपालजी, एक महीने के (घर) निश्चित हों। इस दिन इनके घर जाना। उनके यहाँ उनके लिए सब एक-एक बना हो। अरे रे! अरे भाई! जहाँ अट्ठाईस मूलगुण का छेद है। अष्टपाहुड़ में पाठ है। उनके मूलगुण में छेद है, उनका सब खोटा है, एक भी सच्चा नहीं है। आहाहा! क्या हो? अभी पूरी बात कहाँ करना? आहाहा!

मुमुक्षु : कुन्दकुन्दाचार्यदेव के समय में भी ऐसा था।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा है, इसलिए पुकार किया है। आहाहा!

परमार्थ से मोक्ष के हेतु से अन्य। मोक्ष के हेतु से अन्य अर्थात् बन्ध का कारण। **व्रत, तप इत्यादि शुभकर्म..** अर्थात् शुभ उपयोग, शुभपरिणाम, वह **मोक्षहेतु कितने ही..** अर्थात् अन्दर (पाठ में) जो वह विद्वान कहा न! ऐसे **कुछ लोग मानते हैं,..** आहाहा! **उस समस्त ही का निषेध किया गया है;..** सम्पूर्ण व्यवहार (निषेध किया गया है)। आहाहा! कठिन काम है।

समस्त ही.. अर्थात् क्या कहा? व्रत इत्यादि शुभपरिणाम, वह समस्त निषेध किया गया है। शुभ के अनेक प्रकार हैं, असंख्य प्रकार हैं। शुभभाव, वह व्यवहार प्रभावना.. परन्तु वह सब शुभभाव तो निषेध किया गया है। आहाहा! बाहर में कोई समझे, इसलिए व्यवहार प्रभावना (करते हैं), वह (कुछ प्रभावना नहीं है)। उसे क्या सम्बन्ध है? उसे शुभभाव आया है, वह व्यवहार प्रभावना। निश्चयस्वभाव की एकाग्रता अन्दर है, वह निश्चय प्रभावना और शुभ (भाव) आया है, वह व्यवहार। वह भी निषेध किया गया है। आहाहा!

(ऐसा सुनकर) फिर सोनगढ़वालों का एकान्त है, कहे न! व्यवहार से कुछ भी होता है, पाँचवाँ काल है, हल्का काल है और अकेले निश्चय-निश्चय की बातें करते हो, ऐसा कहते हैं। बापू! मार्ग तो यह है, भाई! और वह भी हित के लिए है, भाई! यह देह छूटकर चला जाएगा, बापू! यह व्यवहार के पक्ष से धर्म मानकर मिथ्यात्व सेवन कर..

आहाहा! कहीं अनजाने क्षेत्र में (चला जाएगा)। विशेष तो मिथ्यादृष्टि निगोद में जाए, उसकी बात है और चौदह बोल में पशु हो, ऐसा पाठ है। पशु! समयसार में अन्त में चौदह बोल है न! पशु! 'पश्यति इति पशु पद्यते' मिथ्यात्व से बँधे हैं, वे सब पशु हैं। आहाहा! और उस पशु में अवतार (होता है) वह निगोद भी पशु है न! तिर्यंच है न! निगोद तिर्यंच है न! आहाहा!

जिसकी श्रद्धा (ऐसी है कि) व्यवहार से होता है, निश्चय का लाभ होता है, ऐसा जो मिथ्यात्वभाव है.. आहाहा! उसके फलरूप से तो निगोद है और निगोदरूप से जाए उसे पशु भी कहा है। आहाहा! चौदह बोल पीछे आते हैं। तत्, अतत्, एक, अनेक (इत्यादि)। (प्रत्येक श्लोक में) पशु है। चौदह बोल पीछे आते हैं। प्रत्येक श्लोक में पशु.. पशु (कहा है)। संस्कृत में उसका अर्थ किया है। 'पश्यति इति पशु, बध्यति इति पशु' आहाहा! बन्धन अर्थात् मूल तो मिथ्यात्व। मिथ्यात्व से बँधता है, वह पशु है। आहाहा! और उसके फलरूप से पशु में जाएगा। आहाहा! भाई! बाहर में कोई मदद करे कि इतना किया था न!

रामविजय के गुरु प्रेमविजय थे न! श्वेताम्बर! यह रामविजय के गुरु मरते हुए बेचारे बोल गये, अरे रे! मैंने जैन धर्म का विरोध किया। मुझे कोई भेदज्ञान सुनाओ। समाचार -पत्र में आया था। श्वेताम्बर! आहाहा! अन्त में उसे बेचारे को मरते हुए हो गया, मैंने जैनधर्म का विरोध किया है। आहाहा! अब मुझे कोई भेदज्ञान सुनाओ। कौन सुनावे? दूसरे कहे, नहीं, नहीं साहब! आपने तो बहुत काम किया है! आपने तो (बहुत किया है), आहाहा! क्या हो? अरे रे! दुनिया प्रसन्न हो और माने उससे क्या? मिथ्यात्व का छोटा सा कण, शल्य भी अनन्त-अनन्त संसार का कारण है। आहाहा! चारित्रदोष, वह अलग वस्तु है।

दर्शनपाहुड़ में पहले (तीसरी गाथा में) कहा न! '**दंसणभट्ठा ण सिज्झंति.. सिज्झंति चरियभट्ठा**' चारित्र भ्रष्ट होगा, चारित्र नहीं होगा, वह सीझेगा, उसकी दृष्टि में ख्याल है कि मुझमें दोष है। '**दंसणभट्ठा ण सिज्झंति..**' परन्तु दर्शन-श्रद्धा भ्रष्ट है। आहाहा! वह मुक्ति को नहीं जाएगा। '**सिज्झंति चरियभट्ठा**' सम्यक्त्व होगा और चारित्र नहीं हो, चारित्रदोष सेवन करता होगा तो भी उसके ख्याल में है कि यह दोष है। वह आगे उसे टालकर स्थिर होकर मोक्ष जाएगा। '**सिज्झंति चरियभट्ठा**' ऐसा पाठ है। आहाहा! यहाँ

(अज्ञानी) अकेले व्रत, नियम और क्रियाएँ, व्यवहार की बात (करे), उससे मोक्ष होगा, (ऐसा कहता है)। आहाहा! इसमें क्या हो?

यहाँ (कहते हैं) **परमार्थ मोक्षहेतु से अन्य, जो व्रत, तप इत्यादि शुभकर्म-स्वरूप मोक्षहेतु कुछ लोग..** अर्थात् वह जो विद्वान कहा था, वे। **उस समस्त ही का निषेध किया गया है; क्योंकि वह (मोक्ष हेतु) अन्य द्रव्य के स्वभाववाला..** आहाहा! व्रत, तप और भक्ति-पूजा का भाव.. आहाहा! वह तो अन्य द्रव्य के स्वभाववाला होने से। **अर्थात् (पुद्गलस्वभाववाला) है..** आहाहा! यह राग की क्रिया है, वह पुद्गलस्वभावी है, आहाहा! वह भगवानस्वभावी नहीं। आहाहा! एक लाईन, एक गाथा भी बराबर समझे तो (कल्याण हो जाए) परन्तु ऐसे के ऐसे बड़े-बड़े व्यर्थ पढ़े न, ऐई! दस-दस हजार, बीस-बीस हजार लोग इकट्ठे हों। ओहोहो! गजब किया, गजब किया (ऐसा लोग कहें)।

मुमुक्षु : गजब किया!

पूज्य गुरुदेवश्री : गजब अर्थात् ऐसे तो अनुकूल ऐसा कहना चाहते हैं। भारी प्रभावना हुई! सभा में बीस हजार लोग! आहाहा! उसमें क्या हुआ? चींटियों का ढ़ेर सब इकट्ठा हुआ इसलिए। चींटियों का ढ़ेर इकट्ठा हो, इसलिए कहीं वह मनुष्यों की संख्या गिनी जाएगी? आहाहा!

यहाँ प्रभु कहते हैं, कुन्दकुन्दाचार्यदेव, अमृतचन्द्राचार्यदेव महासन्त भगवन्त स्वरूप हैं, वे ऐसा कहते हैं। आहाहा! कि व्रत, तप, शील, संयम, और दमन, यह अन्य द्रव्य का स्वभाव है, भाई! तेरे द्रव्य का स्वभाव नहीं, प्रभु! आहाहा! वह तो पुद्गलद्रव्य का स्वभाव है, भाई! आहाहा! है?

अन्य द्रव्य के स्वभाववाला (पुद्गलस्वभाववाला) है, इसलिए उसके स्व-भाव से ज्ञान का भवन (होना) नहीं बनता... यह व्रत, तप और भक्ति, लाख, करोड़, अरब तू कर। आहाहा! छहढाला में आता है न!

लाख बात की बात यही, निश्चय उर लाओ।
छोड़ि सकल जग द्वंद्व-फंद (निश्चय) आतम उर ध्याओ॥

छहढाला में आता है। आहाहा! पहले के पण्डितों ने बहुत अच्छा काम (किया है)।

टोडरमलजी, बनारसीदास, भागचन्दजी बहुत काम कर गये! आहाहा! भले गृहस्थाश्रम में (होवे) परन्तु दर्शनशुद्धि की बहुत सरस बात (कर गये हैं)। आहाहा!

उसके स्व-भाव से ज्ञान.. अर्थात् आत्मा। व्रत, तप और भक्ति आदि के राग से आत्मा के ज्ञान का **भवन नहीं बनता..** उससे आत्मा का निश्चयस्वभाव शुद्ध है, उसका होना नहीं होता। आहाहा! यह व्यवहार की इतनी-इतनी क्रियाएँ लाख-करोड़ करे, परन्तु क्लेश है, कहते हैं। उससे आत्मा के स्वभाव का परिणमना नहीं होता। आहाहा! कठिन काम, प्रभु!

उसके स्व-भाव से.. अर्थात् पुद्गलस्वभाव द्वारा अर्थात् व्रत, तप के विकल्प, वे पुद्गलस्वभाव हैं, उनसे आत्मा का भवन नहीं होता। उनसे आत्मा की श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र नहीं होता। **मात्र परमार्थ मोक्षहेतु ही..** परमार्थ मोक्ष का कारण ही। यहाँ तो 'ही' लगा दिया है। **एक द्रव्य के स्वभाववाला..** आहाहा! एक जीवद्रव्य के स्वभाववाला मोक्षहेतु। जीवद्रव्य जो है, प्रभु! उसका स्वभाव अत्यन्त वीतरागी, आनन्द, शान्ति, अतीन्द्रिय पवित्र भगवान.. आहाहा! वह एक ही **द्रव्य के स्वभाववाला..** और वह द्रव्य के स्वभाववाला मोक्षमार्ग है। आहाहा! ऐसा स्पष्टीकरण करने जाए तो कहे, ऐ.. एकान्त है.. एकान्त है। परन्तु इसमें.. बापू!

मुमुक्षु : आचार्य का है परन्तु छपाया तो सोनगढ़ ने न!

पूज्य गुरुदेवश्री : सोनगढ़ ने छपाया हो तो भले छपाया। चाहे जिसने (छपाया हो), भाव, शब्द किसके हैं? अनन्त तीर्थंकर, अनन्त केवली (यह कहते हैं)। कुन्दकुन्दाचार्यदेव कहते हैं, वह सर्वज्ञ कहते हैं, वह कहते हैं। आहाहा! अमृतचन्द्राचार्यदेव हजार वर्ष पहले हुए परन्तु अनन्त तीर्थंकर और केवली और सन्त कहते हैं, वही कहते हैं। आहाहा! उनकी परम्परा है, वह सर्वज्ञ की परम्परा है। आहाहा! अमृतचन्द्राचार्यदेव हैं न! आहाहा! भगवान अनन्त सन्त और भगवान केवली हुए, उनके स्वभाव के अनुसार परमार्थ से भगवान अमृतचन्द्राचार्यदेव कहते हैं। आहाहा!

मात्र परमार्थ मोक्षहेतु ही एक द्रव्य के स्वभाववाला.. देखा? यह जीवस्वभावी है। आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प-राग पुद्गलस्वभावी है, अन्य द्रव्य स्वभावी है।

जबकि सच्चा मोक्ष का मार्ग एक जीवद्रव्य स्वभावी है, एक जीवद्रव्य स्वभावी है। पुद्गल व्यवहार का और निमित्त का उसमें कुछ सम्बन्ध और संग नहीं है। आहाहा! अरे रे! अनन्त तीर्थंकरों का यह मार्ग है, भाई! भगवान का विरह पड़ा, प्रभु रहे वहाँ। आहाहा! और मार्ग को कुछ अलग-अलग प्रकार से मिलावे। सुननेवालों को खबर न हो, इसलिए प्रसन्न-प्रसन्न हो जाते हैं। आहा! अरे.. प्रभु! आहाहा!

व्रत और तप और जितने शुभभाव के भाव और असंख्य प्रकार के आचरण, वह सब पुद्गलस्वभावी है। आहाहा! इसलिए उसे मोक्ष के हेतु का निषेध किया है। एक जीवद्रव्य स्वभाव, एक जीवद्रव्य अपना भगवान! आहाहा! विकार तो एक समय की पर्याय में है। बाकी पूरा द्रव्य तो पवित्र धाम है। आहाहा! ध्रुवधाम बड़ा परिपूर्ण गुण से भरपूर भगवान है। उसका स्वभाव—एक द्रव्यस्वभावी—एक ही द्रव्य। उसमें दूसरे द्रव्य का संग और निमित्त की आवश्यकता नहीं है। आहाहा!

एक द्रव्यस्वभावी अर्थात् जीवस्वभावी। **उसके स्वभाव के द्वारा ज्ञान का भवन (होना) बनता है।** उस द्रव्य के-जीव के स्वभाव द्वारा ज्ञान अर्थात् स्वभाव का (अर्थात् कि) ज्ञान का, श्रद्धा का, शान्ति का, आत्मा का परिणमन होता है। एक द्रव्य के स्वभाव द्वारा शुद्ध परिणमन होता है। बाकी अन्य द्रव्य का जो रागादि स्वभाव है, वह सब पुद्गल का स्वभाव है। विशेष कहेंगे..... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)